

स्वतंत्रोत्तर हिंदी उपन्यासकारों के लेखन में नारी दशा

कुमारी कल्पना

शोधार्थी राधा गोविंद यूनिवर्सिटी झारखंड

डॉक्टर मनमीत कोर

सहायक प्राध्यापक, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग, आर. जी. यू. रामगढ़

सार

स्वतंत्रता के बाद स्त्री अपने अधिकारों के प्रति अधिक सचेत एवं जागरूक हुई है। परिवार, समाज, राजनीति, आर्थिक एवं धार्मिक सभी क्षेत्रों में उसकी क्रियाशीलता बढ़ी है। वह अपने कर्तव्यों के प्रति सजग है, परन्तु शोषित होकर नहीं, बल्कि जागरूक होकर। जिस पितृसत्तात्मक सत्ता द्वारा वह नियंत्रित होती रही हैं, उसके प्रति वह अधिक सतर्क हुई है। राजनीति ऐसा क्षेत्र है, जिसके द्वारा सबको अपने लिए संघर्ष करने का एक मार्ग मिल जाता है, स्त्री-वर्ग इस रहस्य को भली-भांति जान गया है। यही कारण है कि आजादी के बाद ही इस दिशा में स्त्री की क्रियाशीलता अधिक बढ़ गयी। पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी इसके सशक्त उदाहरण थीं। जो भारत ही नहीं, अपितु विश्व की नेत्री बनने में सक्षम थीं। आज के संदर्भ में सोनिया गांधी, सुषमा स्वराज, शीला दीक्षित, ममता बनर्जी, प्रतिभा पाल्लि वदा कारात आदि का नाम लिया जा सकता है। मायावती भारतीय राजनीति में एक ऐसा नाम है, जो दलित एवं गरीब परिवार से हो कर भी भारतीय राजनीति को प्रभावित किया है। समकालीन समय उत्तर आधुनिकता का है। इसमें स्त्रीवाद के स्वरूप को फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर मिल रहा है। यहां स्त्री नये-नये रूपों में प्रकट हो रही है। यदि कहा जाय कि उत्तर-आधुनिकता में स्त्री का एक नवीन अवतार हुआ है तो गलत न होगा। उत्तर-आधुनिकता में स्त्रीवाद एक जीवन-दर्शन के रूप में आया है और अपना-प्रचार कर रहा है। पाश्चात्य के साथ-साथ भारतीय साहित्य में इसे-प्रफुल्लित होने का पर्याप्त अवसर मिला है। हिन्दी साहित्य भी इसके प्रभाव से वंचित नहीं है। उत्तर-आधुनिकता में 'स्त्रीवाद' का स्वरूप क्या है? इस पर ओम प्रकाश शर्मा लिखते हैं।

परिचय

''उत्तर-आधुनिकता की एक प्रवृत्ति 'स्त्रीवाद' है। दारिदा ने पाठ में अनुपस्थिति की तलाश की बात कही है। परम्परागत साहित्य में स्त्री का स्वर दबा तथा मर्द लेखन की स्थापना मिलती है। इस लिए स्त्रीवाद एक नये पाठ की वकालत करता है। पाश्चात्य स्त्रीवाद का हिन्दी साहित्य पर जाने-अनजाने प्रभाव पड़ा है। इस प्रकार उत्तर-आधुनिक चिंतन में स्त्रीवादी विचारधारा को नये परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। पश्चिमी स्त्रीवाद समझने की चीज है, ग्रहण करने की चीज नहीं।''¹

साहित्य में उत्तर-आधुनिकतावादी आलोचना के साथ ही विखण्डनवादी आलोचना भी आगे बढ़ी है। इसमें 'स्त्रीवाद' को केन्द्र में रखकर स्त्री शोषण, स्त्री मुक्ति, स्त्री अधिकार, स्त्री-पुरुष के आपसी भेद, आदि बिन्दुओं को उद्घाटित किया जा रहा है। अपनी सैद्धान्तिक मान्यताओं के अनुरूप विखण्डनवाद 'पाठ' को केन्द्र में रखता है। 'स्त्रीवाद' में वह स्त्री शरीर को केन्द्र में रखकर इस

विषय पर अपनी मान्यताओं एवं धारणाओं को उद्घाटित करता है। इस संदर्भ में सत्यदेव मिश्र का मानना है कि "किसी भी पाठ को औरत की तरह पढ़ना, स्त्रीवाद समीक्षा का केन्द्र बिन्दू है। विखण्डन वाद औरतों के लिए लिंग भेदी दमन को सामने लाता है। अब तक समीक्षा मर्दवादी था। समीक्षा में अब तक पुरुषों की स्थापना का प्रयास रहा था अब स्त्री की स्थापना का प्रयास होने लगा है।

निश्चित रूप से स्त्री और स्त्रीवादी चेतना पर आरंभ से लेकर अब तक। वैदिक काल से लेकर उत्तर-आधुनिक काल तक। पाश्चात्य से लेकर प्राच्य तक। सभी बिन्दुओं पर गहना से अध्ययन किया जाय, विवेचन-विश्लेषण किया जाय तो अन्ततः निष्कर्ष निकलता है कि स्त्रीवादी चेतना अपने आप में एक नया विषय है। यदि स्त्री की पूर्व एवं वर्तमान स्थिति, उत्थान-पतन आदि विषयों को केन्द्र में रखकर विचार-विमर्श किया जाए तो निश्चित रूप से स्त्रीवादी चेतना अपने आप में एक नव्य विमर्श है।

हिन्दी उपन्यास में नारी :

वे लिखते हैं-"में उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मानता हूँ। चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।" आज के उपन्यास में महिला की उपन्यासकारों के उपन्यास समय की समस्याओं और चुनौतियों से भरा है। उपन्यास लेखन की और महिला एवं पुरुष दोनों ही अग्रसर हुए हैं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मात्रात्मक ही नहीं अपितु गुणात्मक परिवर्तन भी आया है। आधुनिक जीवन में मूल्य की सर्वाधिक चर्चा रही है। साहित्य की लोकप्रिय विधा उपन्यास के माध्यम से वर्तमान में बदलते मूल्य अपना अस्तित्व खोए रहे हैं।

आधुनिक युग में 'उपन्यास के महत्व को प्रतिपादित करते हुए एक विद्वान लिखते हैं। "मध्य युग में जो स्थान महाकाव्य का था, उससे भारतेन्दु युग में जो स्थान नाटक का था वही वरन् युग के अनुकूल उससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण स्थान आज उपन्यास का है।"

हिन्दी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में मूल्य चेतना से संबद्ध है महिला लेखिकाओं ने उपन्यास लेखन में अपना विशेष योगदान दिया है। इनका चिंतन एवं इनकी दृष्टि समाज की सच्चाई व सत्य के अधिक निकट है, हिन्दी उपन्यास में महिलाओं का विशेष योगदान रहा है, दूसरा इनके साहित्य की प्रायः उपेक्षा होती रही है। यदि उपन्यास साहित्य में महिलाओं को उजागर किया भी गया तो इनके दृष्टिकोण का व्यापक चित्रफलक उभरकर सामने नहीं आ सका, नारी होने के नाते इनकी प्रेम समस्या पुरुष की प्रेम समस्या से भिन्न है। नारी अपने स्वतंत्र अस्तित्व को न केवल पहचानने लगी है अपितु उसे स्थापित भी करने लगी है। "नारी के जीवन के प्रेम की अनुभूति उसके केन्द्र में है और इसकी अपनी सीमाएँ भी हैं एक नारी के जीवन में व्याप्त संत्रास, घुटन, त्रासदी, प्रेममय भाव और व्यापार को नारी मन की अपेक्षा कौन अधिक सच्चाई से प्रकट कर सकता है।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नारियों के विषय चुनाव को संगत बतलाते हुए कहा है-यह विचित्र बात है कि स्त्री जब साहित्य लिखती है, स्त्रियों के बारे में ही लिखती है और पुरुष जब साहित्य लिखता है तब भी स्त्रियों के संबंध में ही लिखता है। दोनों में अंतर यह होता है कि स्त्री के लिखने

का उद्देश्य है अपने विषय में फैले हुए भ्रम का निराकरण और पुरुष का उद्देश्य है विषय में और भी भ्रम पैदा करना। महिला उपन्यासकारों का लेखन चुनने के पीछे यह भाव प्रमुख रूप से रहा है। “जाके पांव न फटी विवाई वो क्या जाने पीर पराई। पुरुष उपन्यासकारों की अपेक्षा नारी मन के चित्रण में महिलाओं की अधिक समर्थ सिंह हो सकी है। सूर्यबाला के अनुसार-“अनुभव यही कहता कि लेखिकाओं का क्षेत्र अधिकतर घर और नारी मन रहा है जबकि पुरुष का घर बाहर दोनों, लेकिन हम इस क्षति की पूर्ति भी कर लेती हैं नारी मन की अथाह गहराइयों में बैठकर और इतना तो मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि नारी के अंदर इतने गढ़ लिलिस्म गुफाएँ और प्राचीर हैं कि इन्हें भेद पाना आसान नहीं, जितनी सभ्यता से नारी भेद सकती है पुरुष नहीं।”

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी उपन्यास में नारी :

डॉ. राजेन्द्र प्रताप का कथन है “आजादी से पूर्व उपन्यास के सरोकार राष्ट्रीय और सामाजिक थे तो आजादी के बाद मूल्य विघटन, राजनीतिक प्रपंच, सर्वव्याप्त भ्रष्टाचार और व्यवस्थागत दबावों में पिसते लोग और इस सबसे 0पर वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास। इन्हीं सबके बीच कहीं टूट रहे थे नैतिकता के प्रतिमान। हिन्दी उपन्यास में महिलाओं के उपन्यासों का रचनात्मक स्तर पर उनमें अनेक नवीन प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। युग संवेद एवं बौद्धिक संवेदना के कारण ऐसी विशेषताओं का प्रभाव स्वाभाविक है क्योंकि रचनाकार का अपना एक दृष्टिकोण होता है जिसके माध्यम से वह यथार्थ को अन्वेषित करता है।

वर्तमान उपन्यास लेखन दृष्टि का परिप्रेक्ष्य सर्जनात्मक रूप में सामाजिक यथार्थ बोध से उत्पन्न मूल्यों, प्रवृत्तियों एवं युगीन स्थितियों को निरूपित किया। ये प्रवृत्तियाँ आज के जीवन में जीवन परिवेश से अद्भुत हैं। महिला उपन्यासकारों के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों में ही इस प्रकार की वैचारिक प्रक्रिया दिखाई पड़ती है। इनमें कुछ विशिष्टताएँ पूर्ववर्ती उपन्यासों में भी मिलती है, यथा-यथार्थवाद, प्रकृतिवाद, आदर्शवाद आदि लेकिन यहाँ की प्रवृत्तियाँ सर्जनात्मक धरातल की आवश्यकता के रूप में न आकर लेखकीय चिंतन के रूप में मुखरित हुई है अर्थात् आज के रचनात्मक अनुभवों पर आरोपित न होकर सामायिक शून्य स्थिति एवं वस्तुपरक दृष्टिकोण से व्यंजित हुई है। जीवन की जटिल विविध एवं परम्परा बोध की रूढ़ियों से संबद्ध भाव चेतना के परिवर्तित स्वरूप को वैचारिक धरातल पर इन उपन्यासकारों ने वर्णित किया है युग के परिवर्तन के साथ मानव मूल्यों आस्थाओं एवं विचारों में परिवर्तित धारणाओं के प्रत्यक्ष दर्शन आठवें दशक के लेखन में होता है।

स्वतंत्रता के बाद भारत में लिखे गए उपन्यासों की सूची बहुत लम्बी है, क्योंकि अनेक उपन्यासों ने अलग-अलग कारणों से पाठकों का स्थान आकृष्ट किया है। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में से कुछ तो कथ्य की मौलिकता के कारण चर्चित रहे हैं तो कुछ अपनी चरित्र सृष्टि के कारण। कुछ उपन्यासों में किए गए भाषिक प्रयोग उनकी विशिष्टता रेखांकित करते हैं।

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी उपन्यासों में महिलाओं का भी विशेष योगदान रहा है सदियों से परम्परा और रूढ़ियों की जंजीरों में जकड़ी महिलाओं की कलम यौन संबंधों, काम-चेष्टाओं और रति विषयक नारी दृष्टि को अंकित करने में अपनायी थी, आज की महिलाओं में कृष्णा सोबती, अमृता

प्रीतम, चित्रा मुद्गल, नासिरराग, ममता कालिया, मन्नु भण्डारी आदि महिलाओं ने उपन्यास जगत में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है इन्होंने नारी विषयक सम्यक दृष्टिकोणों को देखते हुए उसके संपूर्ण जीवन की व्यथा को अपनी लेखनी के माध्यम से एक सुन्दर चित्र के रूप में उकेरा है। इन्होंने उपन्यासों में परम्परागत रूढ़ियों स्थापित मान्यताओं के विरुद्ध नारी स्थिति का वास्तविक चित्रण किया है। प्रेम, वात्सल्य, विवाह वासना ममता आदि की सशक्त अभिव्यक्ति की है। उन्होंने अपने समकालीन जीवन का यथार्थ चित्रण किया है।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में जो नई प्रवृत्ति उभर आई है, वह है आंचलिक उपन्यासों का प्रवेश। "जब हम स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यास की बात करते हैं तो सब से पहले हमारी दृष्टि जाती है उन उपन्यासों पर जिन्होंने आंचलिक जीवन को रूपायित कर भारतीय जीवन के उभरते हुए अनेक अनुभवों, संबंधों और मूल्य संघर्ष का संश्लिष्ट चित्रण किया है। इस उपन्यास की धारा में रेणु का मैला आंचल अधिक महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा रेणु ने हिन्दी साहित्य में एक नई उपन्यास शैली प्रस्तुत करने में सफल प्रयत्न किया। यद्यपि नागार्जुन का उपन्यास खलचनमाह इसके पहले प्रकाशित हुआ था तो भी आंचलिक उपन्यास के सही अर्थ में रेणु का मैला आंचल ही हमारे सामने आता है। यहाँ डॉ. नगेन्द्रजी का विचार उल्लेखनीय है सत्य तो यह है कि मैला आंचल और परती परिकथा में ग्रामांचल के जितने विशद और सवाक चित्र देखने को मिलते हैं उतने अन्य तथाकथित आंचलिक उपन्यासों में नहीं। इन है युग के परिवर्तन के साथ मानव मूल्यों आस्थाओं एवं विचारों में परिवर्तित धारणाओं के प्रत्यक्ष दर्शन आठवें दशक के लेखन में होता है।

स्वतंत्रता के बाद भारत में लिखे गए उपन्यासों की सूची बहुत लम्बी है, क्योंकि अनेक उपन्यासों ने अलग-अलग कारणों से पाठकों का स्थान आकृष्ट किया है। स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासों में से कुछ तो कथ्य की मौलिकता के कारण चर्चित रहे हैं तो कुछ अपनी चरित्र सृष्टि के कारण। कुछ उपन्यासों में किए गए भाषिक प्रयोग उनकी विशिष्टता रेखांकित करते हैं।

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी उपन्यासों में महिलाओं का भी विशेष योगदान रहा है सदियों से परम्परा और रूढ़ियों की जंजीरों में जकड़ी महिलाओं की कलम यौन संबंधों, काम-चेष्टाओं और रति विषयक नारी दृष्टि को अंकित करने में अपनायी थी, आज की महिलाओं में कृष्णा सोबती, अमृता प्रीतम, चित्रा मुद्गल, नासिरराग, ममता कालिया, मन्नु भण्डारी आदि महिलाओं ने उपन्यास जगत में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है इन्होंने नारी विषयक सम्यक दृष्टिकोणों को देखते हुए उसके संपूर्ण जीवन की व्यथा को अपनी लेखनी के माध्यम से एक सुन्दर चित्र के रूप में उकेरा है। इन्होंने उपन्यासों में परम्परागत रूढ़ियों स्थापित मान्यताओं के विरुद्ध नारी स्थिति का वास्तविक चित्रण किया है। प्रेम, वात्सल्य, विवाह वासना ममता आदि की सशक्त अभिव्यक्ति की है। उन्होंने अपने समकालीन जीवन का यथार्थ चित्रण किया है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तावित अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है-

1. स्वतंत्रोत्तर हिंदी उपन्यासकारों के लेखन में नारी दशा एवं उसमें सुधार का अध्ययन।

2. सभी धर्मों में नारी के संबंध में कड़े नियम बनाए का अध्ययन

स्वातंत्रोत्तर उपन्यास रू दृष्टि, संवेदना, पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव और भाषा शिल्प

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास दृष्टि एवं संवेदना

हिंदी उपन्यास मानव चरित्रांकन का सबसे अच्छा माध्यम रहा है। हिंदी उपन्यास के विकास में परिवर्तन के अनेक आयामों को छुआ है, यह हिंदी उपन्यास की लोकप्रियता एवं श्रेष्ठत्व का द्योतक है। व्यक्ति, मन, समाज, घटना और वर्णन के पड़ावों से गुजरता हुआ हिंदी उपन्यास अपने ध्येय की ओर अग्रेसर हो रहा है।

मानव जीवन हमेशा संघर्षरत रहा है। उत्थान-पतन के कितने दौरों से गुजरता हुआ आज वर्तमान में अपनी स्थिति तक पहुँच सका है। हिंदी उपन्यास में मानव जीवन को कथानक का केंद्र बनाकर उसके विविध रूपों का उद्घाटन किया जा रहा है। उपन्यास विधा मुख्यतः आधुनिक सभ्यता की देन है। उपन्यास मानव की समग्रता की ओर उत्सुक वह महाकाव्य है, जिसमें मानव अपने संपूर्ण स्वरूप में चित्रित होता है। जिसमें मानव जाति का वैज्ञानिक सर्वेक्षक बनकर उसका अनुसंधान करता उपन्यास का आरंभिक आभास काव्य गंधों में ही दिखाई देता है। यूनानी साहित्य में खासकर यह देखा गया है। संस्कृत, रूमानी, यूनानी साहित्य में रोमांस अपने विविध रूप में इतिहास, दर्शन, धर्म सभी साहित्य में रोमानी साहित्य का समावेश पाया जाता है। उपन्यास केवल मात्र कथानक गद्य नहीं है, बल्कि वह मानव जीवन का गद्य है, जो मानव को परिपूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयास करता है। हिंदी साहित्य के इतिहास में गद्य का आरंभ पद्य के बाद हुआ और गद्य साहित्य में उपन्यास की बारी देर से आयी।

उपन्यास भारतेन्दु युग में अनुवाद के रूप में हिंदी साहित्य में आया है। शुरू में उपन्यासों का केंद्र कौतुहल एवं मनोरंजन था। ब्रिटिशों के शासन में भारत में पुनर्जागरण काल का आरंभ हुआ है। जिससे उपन्यास सामाजिक संबद्धता ग्रहण करता गया और कथानकों में सामाजिक समस्याओं का अंकन देखा जा सकता है। उपन्यास सम्राट प्रेमचंद ने गोदान के माध्यम से नई वृत्तियों को जन्म लेना

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, ने आधुनिक साहित्य शुरू किया। उन्होंने आदर्शपरक सुधारवादी आश्रम व्यवस्था से अपनी लेखनी निकालकर यथार्थवादी भावभूमि पर चलाई है। प्रेमचंद के बाद स्वतंत्रता तक के काल के साहित्य की प्रवृत्तियों को बांधने के काम स्वतंत्रता प्राप्ति के उद्देश्य ने किया। स्वतंत्रता प्राप्त होते ही भारतीय सामाजिक मूल्यों में अचानक परिवर्तन आया और साहित्यिक मूल्यों में भी बदलाव हुआ।

स्वतंत्रता के पश्चात् देश के पुर्ननिर्माण में वर्गहीन, शोषणमुक्त समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य था परंतु हमारे कथित योजनाबद्ध विकासे ने जिस अर्थतंत्र को विकसित किया वह उपभोग प्रधान रहा। अतः मुनाफा तथा उपभोग केंद्रीत हुए। फलतः मुनाफे के लिए भ्रष्टाचार और उपभोग के लिए अनैतिक लोभ विकसित होने ही थे। इसलिए लोभ चरित्र के प्रमुख वाहक बने। बीच में सामाजिक संस्थाओं तथा प्रशासन मशीन का जो भय था वह भी घुस, रिश्वत, गुट-राजनीति,

संरक्षण चक्र आदि के द्वारा निष्क्रिय सा बना दिया गया। अतः उच्च कार्यों में तो उभरी पदलोलुपता और मुनाफा, तथा व्यापक जनता में फैली भयानक गरीबी और स्वार्थपरता दोनों ही ओर अमानवीयता गहरी हुई, दोनों ही ओर विभिन्न प्रकार का आत्म परायणन नजर आया। समाज में श्रम का निर्वासन तथा व्यक्ति में परायणन। वर्ग वैषम्य बढ़ता गया। आर्थिक विषमता, भ्रष्टाचार, राजनैतिक बौनापन, मानवीय मूल्यों का निष्कासन, महंगाई, मानवीय रिश्तों का बिगड़ना, बेकारी, चरित्रहीनता ने व्यक्ति को उस सीमा तक तोड़ दिया कि उसके मन में भविष्य के प्रति आस्था ही नहीं रही औद्योगिक सभ्यता व्यक्तित्व का नाश करती है। व्यक्ति में आत्मनिर्णय, विवेक, निर्णय शक्ति का हास हो जाता है, उसका व्यक्तित्व भी विखड़ित हो जाता है।

सभी क्षमताओं से युक्त व्यक्ति उपेक्षित कर दिया गया और क्षमता रहित वर्ग संपूर्ण समाज का प्रयोग निजी स्वार्थों के लिए करने लगा। व्यक्ति स्वस्तुह में परिवर्तित कर दिया गया। स्वतंत्रता के बाद समय मोह भंग का समय था। देश के विभाजन के पश्चात् की स्थिति ने मानव-मूल्यों के विघटन को चरम सीमा पर पहुंचा दिया। इससे देश में मूल्यों, आस्थाओं का खंडन, बुद्धिजीवियों की हार से आत्मग्लानी से टूट गया और आगजनी, बलात्कार, अपहरण एवं हत्याओं का बोलबाला शुरू हुआ। इस स्थिति ने विश्वास को तोड़कर व्यक्ति को अपाहिज बना दिया। जिससे उसे दूसरे के सहारे जीना।

नये साहित्य सा सौंदर्यशास्त्र -

मुक्तिबोध पड़ता था। वह पूर्णतः नया व्यक्ति था, जो आजादी के बाद स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों का नायक बना। जिसे पलायनवादी बना दिया। औद्योगिकता ने उसे एकदम शुष्क या निरस कर दिया। स्वार्थी प्रवृत्तियाँ एवं पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण ने व्यक्ति को हताशा, आतंक एवं तणाव ने वह विस्थापित होकर नैतिकता और संस्कृति के अवमूल्यन के पाठों में अपना सार्थक व्यक्तित्व खो बैठा। विदेशी आक्रमणों ने उसके अस्तित्व को अधिक मलिन कर दिया। उपरोक्त सामाजिक पृष्ठभूमि पर स्वतंत्रता के बाद जो उपन्यास लिखे गये, उन्हें यदि प्रवृत्तियों की दृष्टि से दोखा जाए तो सबसे प्रमुख प्रवृत्ति आधुनिकता के बोध और व्यक्ति स्वातंत्र्य की है। दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति यथार्थ की व्यापक स्वीकृति है। अन्य प्रवृत्तियों में आँचलिकता, अंतर्राष्ट्रीयता और तकनीकी का मोह की प्रवृत्तियाँ प्रमुख हैं। संपूर्ण उपन्यास विधा को मद्देनजर रखते हुए अगली चर्चा निम्नांकित बातों पर करना ज्यादा सार्थक होगी।

उपन्यास विधा पर पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव

आजादी के बाद भारत अपना स्वतंत्र अस्तित्व के पुनर्गठन को लेकर विश्व मंच पर खड़ा रहा। जिससे अपने स्वतंत्र अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की स्थापना हुई। अंतर्राष्ट्रीय चेतना तथा संशोधन की प्रवृत्ति के कारण उपन्यासकार अपनी सीमाओं को विस्तृत कर वे पाश्चात्य विचारधारा को स्वीकार कर अपने उपन्यासों में नये आयाम निर्माण किये हैं। अज्ञेयजी के मतानुसार उपन्यास का यह विकास डार्विन और मार्क्स के अविर्भाव और प्रचार के साथ-साथ हुआ। नये वैज्ञानिक अनुसंधान और ज्ञान ने उपन्यासकार की दृष्टि बदल दी। उसका लिखना ही बदल गया, क्योंकि उसकी दृष्टि बदल गयी। उसके बाद एक और बहुत बड़ा परिवर्तन सिगमंड फ्रायड के साथ आया। उसकी

मनोविश्लेषण पद्धति ने व्यक्ति-मानस और व्यक्ति-चेतना की गहनताओं पर नया और तिखा प्रकाश डाला। इससे उपन्यासकार को व्यक्ति-मानस को समझने में बड़ी सहायता मिली, बल्कि एक नयी दृष्टि और पैठ मिली, जिसके सहारे वह व्यक्ति-विशेष के मन के भीतर होनेवाले संघर्ष को पहचान सका।

रूसी उपन्यासकार टालस्टाय ने भारतीय उपन्यासकारों को सर्वाधिक प्रभावित किया। जैनेन्द्रकुमार पर टालस्टाय, रोमा रोला और डी. एच. लॉरेन्स का रागेय राघव पर फ्रांसीसी रम्यारण्यों का धर्मवीर भारती पर बाल्जाक और ऑस्कर वाइल्ड का भगवतीचरण वर्मा पर विक्टर ह्यूगो और अनातोल का तथा डॉ. देशराजसिंह भाटी पर टालस्टाय एवं डी. एच. लॉरेन्स का प्रभाव दृष्टिगोचर किया जा सकता है।

कई उपन्यासकारों पर फ्रायड, एडलर और यंग के मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव पड़ा। अतः उपन्यासों में मानव आंतरिक प्रवृत्तियों को प्रधानता मिलती गयी। धीरे-धीरे उपन्यास कला की संरचना ने बाह्य घटना और चरित्र का आधार कम होता गया और अनुभूति को आत्मनिष्ठ रूप के आधार पर ही उपन्यासों की रचना की जाने लगी। जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचंद्र जोशी ने इसका प्रयोग अपने उपन्यासों में बहुत अच्छी तरह से किया है। जैनेन्द्र अंतर्मन के रचनाकार है तो अज्ञेय अपने पात्रों की मानसिकता को विश्लेषित करने, उनकी चारित्रिक ग्रंथियों को खोलने में, अंतर्मन को स्पष्ट करने में सफल रहे हैं। इलाचंद्र जोशी के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद श्रेष्ठतम रूप में है।

प्रेमचंद परवर्ती युग में वैयक्तिकता के साथ समाज की पकड़ ढीली हुई और व्यक्ति प्रकार के स्थान पर विशेष बनने लगा और अंतर्जीवन का महत्व बढ़ गया। इसके साथ ही मन में उड़नेवाले भावों, प्रतिक्रियाओं और अंतर्द्वंद्व का चित्रण प्रधान हो गया। मनोवैज्ञानिक उपन्यास स्वस्थ व्यक्ति एवं समाज नहीं बना सकें इन लेखकों की अधिकांश रचनाओं में जीवन के यथार्थ नहीं कल्पनाशील परिस्थितियों एवं अवचेतन मन की स्थितियों, वासनामूलक प्रवृत्तियों और अहं का ही चित्रण किया गया है। इन रचनाओं में जो व्यक्ति चित्रित हुआ है, वह सेक्स के अभिशाप से ग्रस्त है और उसके जीवन की विभिन्न समस्याओं का समाधान, संघर्ष और जूझने में नहीं, नारी की गोद में है।

उपन्यास और आधुनिक बोध -

भारत में पारुचात्य संस्कृति के अंधानुकरण को ही आधुनिकीकरण समझा जाता है। यह सच है कि संकटबोध ही वर्तमान में आधुनिक बोध है। वास्तविक आधुनिकता का आशय है संपूर्ण सत्य का साक्षात्कार और इसका सर्वश्रेष्ठ माध्यम उपन्यास है, क्योंकि उपन्यास का केंद्रीय प्रयोजन ही जीवन की व्याख्या है।

स्वातंत्र्योत्तर काल के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं की पैनी निगाहों का आरंभ और तर्क संगत व्याख्या करने की चेष्टा की है। इन उपन्यासों ने युग की सच्चाइयों को बयान किया है। इस काल में उपन्यासकारों ने मानव-मूल्य और मर्यादाओं की गहन सामाजिक संबद्धता, अनुभूतियों की प्रामाणिकता और अभिव्यक्ति की इमानदारी को स्थापित किया है। इनके उपन्यासों के पात्रों में प्रचंड संघर्ष हैं, विद्रुपताएँ, कुंठाएँ, घुटन, अकेलापन और पराजय के क्षण हैं। परंतु यह स्थितियाँ उन्हें

तोड़ती नहीं। उनका विश्वास मनुष्य की अदम्य, अपराजेयता में है। अतः इन उपन्यासों का परिवेश शुद्ध भारतीय है।

आधुनिक हिंदी उपन्यासों में मानव और समाज के संबंधों का पुनर्मूल्यांकन व्यक्ति और परिवेश के सूत्रों को अन्वेषित करने की दृष्टि से हुआ है। इन उपन्यासों का व्यक्ति आत्मकेंद्रीत नहीं, समाज से प्रतिबद्ध है। उसमें दायित्व चेतना है, जो निरंतर संघर्षशील है। वह जानचा है कि एक नैतिक मूल्य एवं एक नये विश्व की रचना के लिए जहाँ एक ओर धर्मासुर रूढिवादी परंपरा तथा धार्मिक आड़बरो का निषेध आवश्यक है, वही दूसरी ओर भारतीय संस्कृति के कुछ प्राचीन तत्व भी आवश्यक हैं। इसीलिए वह भारत का पूर्णतः निषेध न कर पश्चिम को नहीं ओढ़ता बल्कि दोनों में आवश्यक सामंजस्य निर्माण करता है।

अमृतलाल नागर, वृंदावनलाल वर्मा, श्रीलाल शुक्ल, गिरिराज किशोर, भगवतीचरण वर्मा, शिवप्रसादसिंह, रांगेय राघव आदि के उपन्यासों में बदलते हुए पारिवारिक संबंध, स्त्री-पुरुष के संबंध तथा नारी के संबंध में एक नया दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है। इस युग में स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण को पवित्रता-अपवित्रता से परे सहज मानवीय वृत्ति के रूप में स्वीकृति मिली। कथावस्तु के मूल्य में मुख्यतः मध्यवर्ग अथवा निम्न मध्यवर्गिय पात्र है। निम्नमध्यवर्गिय नारी पात्र अब अपनी प्राचीन परंपराओं से कटकर नवीन मूल्यों की तलाश कर अपनी स्वतंत्र पहचान बनाना चाहती है। आर्थिक निर्भरता, उसकी दास्ता की मुक्ती का आरंभिक चरण हो सकता है। इसके लिए संघर्षरत नारी के चित्र भी मिलते हैं।

प्रेम का आधुनिक स्वरूप, प्रेम और वासना, प्रेम का परिणाम, नयी पिढ़ी का इस संदर्भ में विद्रोह आदि अनेक प्रश्न उठाये गये हैं। उसका समाधान भारतीय परिवेश के समानांतर करने की कोशिश की गयी है। प्रेम शब्द की भी उपन्यासों में अनेक व्याख्याएँ मिली। निर्मल वर्मा के वे दिन में प्रेम का एक रूप दैहिक रूप में चित्रित हुआ है। सच यह है कि आज के उपन्यासों में आधुनिकता के नाम पर जिस नारी का चित्रण हो रहा है वह कामातूर नारी है। ऐसा पुरुष उपन्यासकार ही नहीं अपितु स्वयं लेखिकाओं ने भी चित्रित किया है। दृष्टि का यह एकांगीपन स्त्री-पुरुष संबंधों के चित्रण को बहुत विकलांग बना देता है। सूक्ष्म संवेदनशीलता के धरातल पर नारी का वास्तविक मन पूरी गहराई के साथ निर्रित नहीं हुआ है।

नारी का मनोवैज्ञानिक विकास

मनोविज्ञान व्यक्ति की वातावरण से संबंधित चेष्टाओं का वैज्ञानिक अध्ययन माना जाता है। मनोविज्ञान आज एक स्वतंत्र एवं नया निज्ञान माना जाता है प्राचीन काल में यह तर्कशास्त्र और दर्शनशास्त्र का एक अंग था। इसके बाद इसने अनेक रूप बदले हैं। पहले यह आत्मविद्या, फिर मनोविद्या हुआ, उसके बाद चेतन विद्या और फिर मनोव्यवहार की विद्या। इस बदलाव के साथ मानसिक विषयों के संबंध में निरिक्षण, परिक्षण और सामान्यीकरण की आगमनात्मक पद्धति का प्रयोग होने लगा। मनुष्य के मन के उपरी स्तरों से संतुष्ट होकर मन के भीतरी स्तरों का भी अध्ययन आरंभ हुआ और मनोविज्ञान को मनोविश्लेषण का रूप प्राप्त हुआ व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक दशा का महत्व दूसरे व्यक्तियों के समूहों एवं समाज की गुत्थियों को सुलझाना

चाहता है इस अध्ययन का स्वरूप पाँच पद्धतियों द्वारा निश्चित होता है अंतरदर्शन, निरीक्षण, प्रयोग, तुलना और मनोविरलेषण। इसका क्षेत्र जीवन की वे गूढ़ और रहस्यमयी प्रवृत्तियाँ है जो मानव समाज की सभ्यता में सहायक होती हैं।

मनोविज्ञान का व्यापक परिचय यहाँ न अभिष्ट है और न उचित है। रचना कर्म के लिए आज मनोविज्ञान आवश्यक समझा जाता है और चरित्र-चित्रण के लिए मनोविज्ञान का ज्ञान उपादेय होता है। प्राचीन साहित्य में भी मनोविज्ञान का किसी न किसी रूप में नारी चित्रण के साथ भी संबंध रहा है। हमारे विद्वानों ने नारी चित्रण में व्यावहारिक मनोविज्ञान का प्रयोग किया है। अतः हम यहाँ उन सिद्धांतों की चर्चा करेंगे, जो नारी के मनोवैज्ञानिक विकास में मददगार साबित हुए हैं।

नारी का मनोवैज्ञानिक विकास के अध्ययन की दृष्टि में रखकर सबसे पहले हमारा ध्यान वात्सायन कृत कामसूत्र पर जाता है। वात्सायन के पूर्व भी कई विद्वानों ने इस विषय पर किताबें लिखी है पर इन सबका समन्वित रूप या सार संग्रह सन् ई. की पहली या दूसरी शताब्दी में वात्सायन ने अपनी प्रसिद्ध शकामसूत्रर लिखा कामसूत्रकार ने इसकी परंपरा का उल्लेख स्वयं किया है। इससे यह कह सकते हैं कि मानव जीवन के गूढ़ व रहस्यमय व्यवहारों, चेष्टाओं और प्रवृत्तियों के अध्ययन का प्रयत्न प्राचीन काल से ही आरंभ हो गया था। लोक अध्ययन एवं चिंतन-मनन के बाद ही वह कुछ शास्त्रीय तथ्य, लोकार्थ सृजन कर सकें होंगे। नारी के संदर्भ में उनकी धारणा का सही स्वरूप क्या था ? यह कहना असंभव सा हो सकता है, परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यौन मनोविज्ञान की दृष्टि से नारी उनके अध्ययन का केंद्र बिंदु अवश्य थी।

यौन मनोविज्ञान का सबसे पहला एवं सुव्यवस्थित स्वरूप प्रस्तुत करनेवाला ग्रंथ कामसूत्र ही माना जा सकता है काम के स्वरूप के स्पष्ट करने वात्सायन ने आत्मा से संयुक्त, अंतर्मन से अधिष्ठित श्रोत, त्वचा, चक्षु और प्राणेंद्रियों की अपने-अपने विषयों में अनुकूल रूप में प्रवृत्त प्रवृत्ति का काम माना है। यह प्रवृत्ति जब संयोगादि द्वारा आनंद की विशेष प्रतीति कराती है तो प्रधान काम माना जाता है और शेष प्रवृत्तियाँ अप्रधान मानी जाती है। काम को स्त्री-पुरुष के संप्रयोग का प्रयोग होने के उपाय की आवश्यकता रहती है और शरीर की स्थिति के लिए काम भी आहार की समानधर्मी है। अतः वात्सायन के मतानुसार इस उपाय का ज्ञान कामसूत्र से होता है।

काम के स्वरूप एवं प्रयोजन पर विचार करने के बाद यह स्पष्ट होता है कि वात्सायन ने सैकड़ों वर्ष पूर्व काम को एक प्रवृत्ति ही माना था। इस प्रवृत्ति द्वारा आनंद की विशेष प्रजाति के हेतु ही उपाय ज्ञान की दृष्टि से कामसूत्र की रचना की थी। यह उपाय ज्ञान मानव जीवन गूढ़ एवं रहस्यमय व्यवहारों, चेष्टाओं तथा प्रवृत्तियों का ही अध्ययन प्रस्तुत करते हुए चला है। कामसूत्र की विषय सामग्री के अंतर्गत नारी मनोविज्ञान का जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, वह संक्षेप में निम्नांकित है

नारी विषयक तथ्यों का जो मनोवैज्ञानिक स्वरूप ग्रहण किया जा सकता है, वह यह है कि नारी को काम-प्रवृत्त करने के हेतु वातावरण एवं प्रयत्नों की आवश्यकता होती है, जो साधारण अधिकरण के अंतर्गत आती है। कन्या, पुणर्भ एवं वेश्या की अपनी अपनी कमजोरियाँ हैं। कला ज्ञान द्वारा वातावरण की सृष्टि कर इन कमजोरियों का परिहार भी किया जा सकता है। इस कमजोरियों से लाभ भी उठाया जा सकता है मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह कला-ज्ञान उस वातावरण की सृष्टि करता

है, जो व्यक्तित्व विकास में सहायक सिद्ध होता है। कला-ज्ञानी नारी, राजा से सदा सम्मानित, गुणियों से प्रशंसित, प्रार्थनिय, अभिगम्य एवं लक्ष्यभूता हो जाती है। पतियों को वश में कर सकती है तथा वियोग काल एवं निर्वेदावस्था में भी आनंदपूर्वक रह सकती है। यह वातावरण नारी मन को विचलित भी कर सकता है। क्योंकि कलाओं में चतुर वाचाल, चाटुकारक मनुष्य बिना जान-पहचान के भी स्त्रियों के चित्त को हर सकता है। इसका मनोविज्ञानिक भाव यह लगाया जा सकता है कि स्त्री का मन चातुर्थ, वाचाल, चाटुकारिता का भूखा होता है और इनके वशीभूत हो सकता है।

परस्त्री रमण के कारणों से भी नारी विषयक मनोभावों का जो दुर्बल और प्रबल पक्ष दृष्टिगोचर होता है, उसके अनुसार समर्थ व्यक्ति की पत्नी अपने प्रेमी के शत्रु से पति को विमुख कर सकती है। अनुरक्त होकर अतृप्त रह जाने पर रहस्योद्घाटन द्वारा हानि पहुंचा सकती है, कलंकित कर सकती है अथवा दोषी न होनेपर भी दोषी सिद्ध कर सकती है। अन्य प्रेमिका प्राप्ति का माध्यम अथवा दुर्लभ प्रेमिका प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो सकती है। रागात्मकता के साथ पाये जानेवाले उक्त लक्षण वात्सायन द्वारा नारी के व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक स्वरूप स्पष्ट करते हैं।

सांप्रायिक अधिकरण के अंतर्गत वात्सायन ने यौन मनोविज्ञान की दृष्टि से नारी को तीन नायिकाओं के रूप में देखा है मृगी, वड़वा और हस्थिनी। भाव प्राप्ति के संबंध में स्त्रियों को भी आनंद की उपलब्धि होती है। उपाय-भेद प्राकृतिक है। पुरुष कर्ता है, युवती अधिकरण। कर्ता तथा आधार का कार्य-व्यापार अलग-अलग हैं। अतः प्राकृतिक उपायभेद से व्यापार भेद हो जाता है। पुरुष इस व्यापार में स्वयं को कर्ता समझकर अनुरक्त होती है। रति-सुख के विभिन्न उपायों और उपादानों की चर्चा से यह मनोवैज्ञानिक तथ्य निकलता है कि स्त्री की रागवृद्धि में विचित्रता सहायक होती है, क्योंकि पारस्परिक राग-विचित्रता से ही पैदा किया जाता है।

वात्सायन द्वारा नारी की रागात्मक प्रवृत्ति को जागृत करनेवाली वस्तुओं में देशोपचार को भी महत्व दिया गया है। अतः प्रकृति के विरुद्ध देश के आचार भी नहीं करना चाहिए। इसप्रकार वात्सायन ने कालानुसार होनेवाले मनोवैज्ञानिक बदलावों को भी स्वीकार किया है। स्त्रियों में भावुकता की भी मात्रा अधिक होती है। इसलिए किसी संवेगात्मक आवेग में शीघ्र ही आ जाती है और संवेगावेग के कारण उनको तर्क शक्ति का हास हो जाता है।

स्त्री-पुरुष शीलावस्थापन प्रकरण के अंतर्गत वात्सायन गोणिका पुत्र के इस मत तो उद्धृत करते हुए कि स्त्री किसी भी उज्ज्वल पुरुष को देखकर चाहती है और पुरुष भी उज्ज्वला स्त्री को देखकर चाहता है किंतु अपेक्षा से रुके हुए एक-दूसरे में प्रवृत्त नहीं होते। वह यह स्पष्ट करते हैं कि यह विशेषता स्त्री में अधिक होती है। इससे यही मनोवैज्ञानिक तथ्य समझा जा सकता है कि नारी में संवेग का अधिक्य होने के बाद भी प्रौढ़ता प्राप्त करने पर वह अपने संवेगों को नियंत्रित कर सकती और संवेग नियंत्रण का प्रधान कारण नारी में यह व्यावर्तन प्रवृत्ति जागृत हो जाती है।

नारी का मनोवैज्ञानिक विकास

मनोविज्ञान व्यक्ति की वातावरण से संबंधित चेष्टाओं का वैज्ञानिक अध्ययन माना जाता है। मनोविज्ञान आज एक स्वतंत्र एवं नया निज्ञान माना जाता है प्राचीन काल में यह तर्कशास्त्र और दर्शनशास्त्र का एक अंग था। इसके बाद इसने अनेक रूप बदले हैं। पहले यह आत्मविद्या, फिर

मनोविद्या हुआ, उसके बाद चेतन विद्या और फिर मनोव्यवहार की विद्या। इस बदलाव के साथ मानसिक विषयों के संबंध में निरीक्षण, परिक्षण और सामान्यीकरण की आगमनात्मक पद्धति का प्रयोग होने लगा। मनुष्य के मन के उपरी स्तरों से संतुष्ट होकर मन के भीतरी स्तरों का भी अध्ययन आरंभ हुआ और मनोविज्ञान को मनोविश्लेषण का रूप प्राप्त हुआ व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक दशा का महत्व दूसरे व्यक्तियों के समूहों एवं समाज की गुत्थियों को सुलझाना चाहता है इस अध्ययन का स्वरूप पाँच पद्धतियों द्वारा निश्चित होता है अंतरदर्शन, निरीक्षण, प्रयोग, तुलना और मनोविश्लेषण। इसका क्षेत्र जीवन की वे गूढ़ और रहस्यमयी प्रवृत्तियाँ हैं जो मानव समाज की सभ्यता में सहायक होती हैं।

मनोविज्ञान का व्यापक परिचय यहाँ न अभिष्ट है और न उचित है। रचना कर्म के लिए आज मनोविज्ञान आवश्यक समझा जाता है और चरित्र-चित्रण के लिए मनोविज्ञान का ज्ञान उपादेय होता है। प्राचीन साहित्य में भी मनोविज्ञान का किसी न किसी रूप में नारी चित्रण के साथ भी संबंध रहा है। हमारे विद्वानों ने नारी चित्रण में व्यावहारिक मनोविज्ञान का प्रयोग किया है। अतः हम यहाँ उन सिद्धांतों की चर्चा करेंगे, जो नारी के मनोवैज्ञानिक विकास में मददगार साबित हुए हैं।

नारी का मनोवैज्ञानिक विकास के अध्ययन की दृष्टि में रखकर सबसे पहले हमारा ध्यान वात्सायन कृत कामसूत्र पर जाता है। वात्सायन के पूर्व भी कई विद्वानों ने इस विषय पर किताबें लिखी हैं पर इन सबका समन्वित रूप या सार संग्रह सन् ई. की पहली या दूसरी शताब्दी में वात्सायन ने अपनी प्रसिद्ध शकामसूत्र लिखा कामसूत्रकार ने इसकी परंपरा का उल्लेख स्वयं किया है। इससे यह कह सकते हैं कि मानव जीवन के गूढ़ व रहस्यमय व्यवहारों, चेष्टाओं और प्रवृत्तियों के अध्ययन का प्रयत्न प्राचीन काल से ही आरंभ हो गया था। लोक अध्ययन एवं चिंतन-मनन के बाद ही वह कुछ शास्त्रीय तथ्य, लोकार्थ सृजन कर सकें होंगे। नारी के संदर्भ में उनकी धारणा का सही स्वरूप क्या था ? यह कहना असंभव सा हो सकता है, परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यौन मनोविज्ञान की दृष्टि से नारी उनके अध्ययन का केंद्र बिंदु अवश्य थी।

यौन मनोविज्ञान का सबसे पहला एवं सुव्यवस्थित स्वरूप प्रस्तुत करनेवाला ग्रंथ कामसूत्र ही माना जा सकता है काम के स्वरूप के स्पष्ट करने वात्सायन ने आत्मा से संयुक्त, अंतर्मन से अधिष्ठित श्रोत, त्वचा, चक्षु और प्राणेंद्रियों की अपने-अपने विषयों में अनुकूल रूप में प्रवृत्त प्रवृत्ति का काम माना है। यह प्रवृत्ति जब संयोगादि द्वारा आनंद की विशेष प्रतीति कराती है तो प्रधान काम माना जाता है और शेष प्रवृत्तियाँ अप्रधान मानी जाती हैं। काम को स्त्री-पुरुष के संप्रयोग का प्रयोग होने के उपाय की आवश्यकता रहती है और शरीर की स्थिति के लिए काम भी आहार की समानधर्मी है। अतः वात्सायन के मतानुसार इस उपाय का ज्ञान कामसूत्र से होता है।

काम के स्वरूप एवं प्रयोजन पर विचार करने के बाद यह स्पष्ट होता है कि वात्सायन ने सैकड़ों वर्ष पूर्व काम को एक प्रवृत्ति ही माना था। इस प्रवृत्ति द्वारा आनंद की विशेष प्रजाति के हेतु ही उपाय ज्ञान की दृष्टि से कामसूत्र की रचना की थी। यह उपाय ज्ञान मानव जीवन गूढ़ एवं रहस्यमय व्यवहारों, चेष्टाओं तथा प्रवृत्तियों का ही अध्ययन प्रस्तुत करते हुए चला है। कामसूत्र की विषय सामग्री के अंतर्गत नारी मनोविज्ञान का जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, वह संक्षेप में निम्नांकित है

नारी विषयक तथ्यों का जो मनोवैज्ञानिक स्वरूप ग्रहण किया जा सकता है, वह यह है कि नारी को काम-प्रवृत्त करने के हेतु वातावरण एवं प्रयत्नों की आवश्यकता होती है, जो साधारण अधिकरण के अंतर्गत आती है। कन्या, पुणर्भ एवं वेश्या की अपनी अपनी कमजोरियाँ हैं। कला ज्ञान द्वारा वातावरण की सृष्टि कर इन कमजोरियों का परिहार भी किया जा सकता है। इस कमजोरियों से लाभ भी उठाया जा सकता है मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह कला-ज्ञान उस वातावरण की सृष्टि करता है, जो व्यक्तित्व विकास में सहायक सिद्ध होता है। कला-ज्ञानी नारी, राजा से सदा सम्मानित, गुणियों से प्रशंसित, प्रार्थनिय, अभिगम्य एवं लक्ष्यभूता हो जाती है। पतियों को वश में कर सकती है तथा वियोग काल एवं निर्वेदावस्था में भी आनंदपूर्वक रह सकती है। यह वातावरण नारी मन को विचलित भी कर सकता है। क्योंकि कलाओं में चतुर वाचाल, चाटुकारक मनुष्य बिना जान-पहचान के भी स्त्रियों के चित्त को हर सकता है इसका मनोवैज्ञानिक भाव यह लगाया जा सकता है कि स्त्री का मन चातुर्य, वाचाल, चाटुकारिता का भूखा होता है और इनके वशीभूत हो सकता है।

परस्त्री रमण के कारणों से भी नारी विषयक मनोभावों का जो दुर्बल और प्रबल पक्ष दृष्टिगोचर होता है, उसके अनुसार समर्थ व्यक्ति की पत्नी अपने प्रेमी के शत्रु से पति को विमुख कर सकती है। अनुरक्त होकर अतृप्त रह जाने पर रहस्योद्घाटन द्वारा हानि पहुंचा सकती है, कलंकित कर सकती है अथवा दोषी न होनेपर भी दोषी सिद्ध कर सकती है। अब्य प्रेमिका प्राप्ति का माध्यम अथवा दुर्लभ प्रेमिका प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो सकती है। रागात्मकता के साथ पाये जानेवाले उक्त लक्षण वात्सायन द्वारा नारी के व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक स्वरूप स्पष्ट करते हैं।

सांप्रायोगिक अधिकरण के अंतर्गत वात्सायन ने यौन मनोविज्ञान की दृष्टि से नारी को तीन नायिकाओं के रूप में देखा है मृगी, वड़वा और हस्थिनी भाव प्राप्ति के संबंध में स्त्रियों को भी आनंद की उपलब्धि होती है। उपाय-भेद प्राकृतिक है। पुरुष कर्ता है, युवती अधिकरण। कर्ता तथा आधार का कार्य-व्यापार अलग-अलग हैं। अतः प्राकृतिक उपायभेद से व्यापार भेद हो जाता है। पुरुष इस व्यापार में स्वयं को कर्ता समझकर अनुरक्त होती है। रति-सुख के विभिन्न उपायों और उपादानों की चर्चा से यह मनोवैज्ञानिक तथ्य निकलता है कि स्त्री की रागवृद्धि में विचित्रता सहायक होती है, क्योंकि पारस्परिक राग-विचित्रता से ही पैदा किया जाता है।

वात्सायन द्वारा नारी की रागात्मक प्रवृत्ति को जागृत करनेवाली वस्तुओं में देशोपचार को भी महत्व दिया गया है। अतः प्रकृति के विरुद्ध देश के आचार भी नहीं करना चाहिए। इसप्रकार वात्सायन ने कालानुसार होनेवाले मनोवैज्ञानिक बदलावों को भी स्वीकार किया है। स्त्रियों में भावुकता की भी मात्रा अधिक होती है। इसलिए किसी संवेगात्मक आवेग में शीघ्र ही आ जाती है और संवेगावेग के कारण उनको तर्क शक्ति का हास हो जाता है।

स्त्री-पुरुष शीलवस्थापन प्रकरण के अंतर्गत वात्सायन गोणिका पुत्र के इस मत तो उद्धृत करते हुए कि स्त्री किसी भी उज्वल पुरुष को देखकर चाहती है और पुरुष भी उज्वला स्त्री को देखकर चाहता है किंतु अपेक्षा से रूके हुए एक-दूसरे में प्रवृत्त नहीं होते। वह यह स्पष्ट करते हैं कि यह विशेषता स्त्री में अधिक होती है। इससे यही मनोवैज्ञानिक तथ्य समझा जा सकता है कि नारी में संवेग का अधिक्य होने के बाद भी प्रौढ़ता प्राप्त करने पर वह अपने संवेगों को नियंत्रित कर सकती और संवेग नियंत्रण का प्रधान कारण नारी में यह व्यावर्तन प्रवृत्ति जागृत हो जाती है।

संबंधित साहित्य में स्त्री विमर्श: परिभाषा, स्वरूप एवं विवेचन

समानता, स्वातंत्र्य और लोकशाही यह तीन संकल्पनाओं का प्रमुख उद्देश्य यह है कि हर एक मानव जाति को अपना जीवन सृजनशीलता से जीना। अगर हमें पुरानी मूल्यावस्था से परे हटना है तो हमारी अन्यायदायी परम्पराओं का निषेध सबसे जरूरी है। वर्ग, वर्ण, जाती, वंश इनके साथ साथ लिंगभेद, पुरुष जाति का वर्चस्व हमारी पुरानी परम्पराओं का सबसे अहम भाग था। इसी का फायदा लेकर स्त्री का शोषण चलता रहा और पुरुष जाति का विकास होता रहा, संपत्ति, शिक्षण, राजकारण, धर्मकारण, यह सब चीजे पुरुषों के हाथ में रही और कर्तव्य, त्याग, मातृत्व, प्रेम इनके तले स्त्री अपना दुख्यम स्थान स्वीकारती चली गयी, उसी में अपनी सार्थकता मानती चली गयी।

आदिकाल में भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्री का स्थान और दर्जा उँचा रहा है। वैदिक काल में स्त्री को पुरुषों से उच्च दर्जे का स्थान था। उस समय स्त्री के विकास में बाधा डालने वाली कुप्रथाओं की शुरुआत नहीं हुआ थी। वैदिक समय में स्त्री को पुरुषों के बराबर या उससे ज्यादा अधिकार दिए जाते थे। कला, संस्कृति और विद्या जैसे हर क्षेत्र में उसे पुरुषों के समान अधिकार थे। परन्तु उत्तरवैदिक काल से स्त्री की स्थिति में गिरावट होती रही। स्त्रियों के पद में ह्रास होने लगा। स्त्री के संबंध में वैदिक काल में जितनी उदात्त व्यवस्था थी उतनी पुराण काल में नहीं थी। पुराण काल में पितृसत्ताक समाज का महत्त्व बढ़ने लगा। स्त्री का जीवन संकुचित परिधि में ही रह गया। पुराण साहित्य में स्त्री का जीवन दयनीय दर्शाया गया है। विधवाओं के प्रति उपेक्षित भाव, सती प्रथा को प्रोत्साहन से स्त्री की स्थिति और भी दयनीय होने लगी। महाभारत काल के बाद स्त्री के स्थिति में धीरे-धीरे उतार आता चला गया। स्त्री शिक्षा की सुविधाएँ कम होती चली गयी, उसकी सार्वजनिक जीवन में भाग लेने की सुविधाएँ कम होती चली गयी तथा उसके शोषण की शुरुवात होने लगी।

प्रीतम और कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी अस्मिता रू आर्थिक और राजनीतिक संदर्भ

समाज में किसी भी वर्ग में महत्वपूर्ण स्थान एक नारी ही निभा सकती है। नारी अपनी अस्मिता को बचाने के लिए हर कदम पर एक नया एहसास प्राप्त करती है। नारी को समाज में सम्मान उस सीमा तक मिलता है, जिस सीमा तक समाज की उत्पादन प्रक्रिया में महत्वपूर्ण सहायता करने में मिलता है, मानव इतिहास इस बात का साक्षी है, जिन क्षेत्रों और युगों में विशेष रूप से आदि कृषि के युग में उत्पादन के मुख्य साधन में उन्नति करके नारी ने समाज के उत्पादन को एक नई मंजिल पर पहुँचाया तो बड़े पैमाने में मातृसत्तात्मक व्यवस्था अपने संपूर्ण धार्मिक, सांस्कृतिक, क्रियाकलापों दर्शन आदि के साथ नारी की महत्ता का गुणगान गाने लगी।

यदि हम महिलाओं को समाज में सम्मानित एवं सम्मान स्थान दिलाना चाहते हैं, तो उन्हें अपनी अस्मिता का हक उसे दे ताकि वे पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर एवं आत्मविश्वास के साथ इच्छित दिशा की ओर कदम उठाकर देश के हित में अपना यथाशक्ति योगदान दे सकें क्योंकि आत्मनिर्भरता के अभाव में अनेकों योग्य कुशल एवं महत्वाकांक्षी महिलाएँ परावलम्बी हो, कोई अन्य विकल्प न पा सकने के कारण घर की चारदीवारी के अंदर ही कसमसाती रहती है। वास्तव में आर्थिक आत्मनिर्भरता किसी भी देश के विकास की अवस्था के सूचक के रूप में मानी जाती है, ठीक इसी

प्रकार से नारी का सर्वांगीण विकास भी तभी संभव है जब वे धनोपार्जन के कार्यों में समान रूप से भाग लें।

कार्ल मार्क्स एवं एंगिल्स ने भी स्वीकार किया है कि षस्त्रियों का उद्धार और उनकी पुरुषों से समानता तब तक असंभव है, जब तक कि उन्हें समाज में उत्पादकीय कार्यों से वंचित करके घरेलू कामों तक सीमित रखा जाता है।

उपसंहार

उपन्यास आधुनिक युग की देन है। भारत में ही नहीं अपितु विश्वसाहित्य में भी उपन्यास का जन्म एक प्रकार से आधुनिक युग में ही हुआ। यह वस्तुतः कहानी का ही एक आधुनिक रूप है। साहित्य की अन्य सभी विधाएँ जैसे कविता, नाटक कहानी, निबन्ध आदि की अपेक्षा उपन्यास में जीवन की अभिव्यक्ति और प्रभाव अधिक होता है। हिन्दी का सबसे पहला उपन्यास भारतेन्दुहरिश्चन्द्र के युग में प्रकाशित हुआ है। इसलिए इस युग से लेकर उपन्यास का आरंभ माना जाता है। द्विवेदी युग में सामाजिक उपन्यासों का आरंभ हुआ और यह प्रेमचन्द युग के लिए पृष्ठभूमि बन गयी। हिन्दी उपन्यास की विकासयात्रा प्रेमचन्द के आगमन के साथ शुरू होता है। सामाजिक याथार्थों पर आधारित उपन्यास-शिल्प को रूपायित करने वाले प्रथम उपन्यासकार प्रेमचन्दजी हैं। प्रेमचन्द युग में प्रेमचन्द तथा अन्य अनेक उपन्यासकारों ने हिन्दी उपन्यास को विकास के पथ पर खड़ा कर दिया। यद्यपि प्रेमचन्द का युग 1936 में उनकी मृत्यु के साथ समाप्त होता है तो भी उनकी उपन्यास शैली का अनुसरण और अनुगमन द्वितीय महायुद्ध तक बराबर होता रहा। उनके युग के उपन्यासकारों ने सामाजिक समस्याओं का विस्तार के साथ प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपने पहले उपन्यास रसेवासदन में अनेक सामाजिक समस्याओं को उद्घाटित किया। उनका यह प्रयत्न उनके अंतिम उपन्यास रगोदान तक जारी रहा।

संदर्भ

- 1० साधना अग्रवाल, वर्तमान हिन्दी कथा-लेखन और दाम्पत्य जीवन, पृ.सं. -158
- 2० अमृता प्रीतम, धरती सागर और सीपियाँ, पृ.सं.-16
- 3० प्रभा खेतान, स्त्री विमर्श(व्यक्तित्व का सामाजिक होना), पृ.सं.-96
- 4० कृष्णा सोबती के कथा-साहित्य में स्त्री अस्मिता के नये संदर्भ, पृ.सं.-85
- 5० अमृता प्रीतम, कोरे कागज, पृ.सं.-85
- 6० वही, पृ.सं.-85
- 7० अमृता प्रीतम, मित्रो मरजानी, पृ.सं.-73
- 8० स्त्री अस्मिता और कृष्णा सोबती, पृ.सं.-142
- 9० डॉ. गीता सोलंकी, नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास, पृ.सं.
- 10० कृष्णा सोबती, मित्रो मरजानी, पृ.सं.-19